Chapter सत्रह

महाराज पृथु का पृथ्वी पर कुपित होना

मैत्रेय उवाच
एवं स भगवान्वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः ।
छन्दयामास तान्कामैः प्रतिपूज्याभिनन्द्य च ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रय ने कहा; एवम्—इस प्रकार; सः—वह; भगवान्—भगवान्; वैन्यः—राजा वेन के पुत्र रूप में; ख्यापितः—प्रशंसित; गुण-कर्मभिः—गुणों एवं वास्तविक कार्यों द्वारा; छन्दयाम् आस—प्रसन्न किया हुआ; तान्—उन गायकों को; कामैः—विभिन्न भेंटों द्वारा; प्रतिपूज्य—सम्मान प्रदान करके; अभिनन्द्य—प्रार्थना करके; च—भी।.

मैत्रेय ऋषि ने आगे कहा : इस प्रकार उन गायकों ने जो महाराज पृथु की महिमा का गायन कर रहे थे, उनके गुणों तथा वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन किया। अन्त में महाराज पृथु ने सम्मानपूर्वक उन्हें अनेक भेंटें प्रदान कीं और उनकी यथेष्ट पूजा की।

ब्राह्मणप्रमुखान्वर्णान्भृत्यामात्यपुरोधसः ।
पौराञ्जानपदान्श्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मण-प्रमुखान्—ब्राह्मण जाति के प्रधानों को; वर्णान्—अन्य जातियों को; भृत्य—नौकर; अमात्य—मंत्रीगण; पुरोधसः—पुरोहितों को; पौरान्—पुरवासियों को; जान-पदान्—देशवासियों को; श्रेणीः—विभिन्न जातियों को; प्रकृतीः—प्रशंसकों को; समपूजयत्—उचित सत्कार किया।.

इस प्रकार राजा पृथु ने ब्राह्मण तथा अन्य जातियों के समस्त नायकों, अपने नौकरों, मंत्रियों, पुरोहितों, नागरिकों, सामान्य देशवासियों, अन्य जाति के लोगों, प्रशंसकों तथा अन्यों को प्रसन्न किया और उनका सभी प्रकार से सम्मान किया। इस प्रकार वे सभी अत्यन्त प्रसन्न हो गये।

विदुर उवाच
कस्माद्दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी ।
यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

विदुरः उवाच—विदुर ने पूछा; कस्मात्—क्यों; दधार—धारण किया; गो-रूपम्—गाय का स्वरूप; धरित्री—पृथ्वी ने; बहु-रूपिणी—अनेक रूपों वाली; याम्—जिसको; दुदोह—दुहा; पृथुः—राजा पृथु ने; तत्र—वहाँ; कः—कौन; वत्सः—बछड़ा; दोहनम्—दोहनी, दुहने का पात्र; च—भी; किम्—क्या।.

विदुर ने मैत्रेय ऋषि से पूछा : हे ब्राह्मण, जब धरती माता अनेक रूप धारण कर सकती है, तो फिर उसने गाय का ही रूप क्यों ग्रहण किया? और जब राजा पृथु ने उसको दुहा तो कौन बछड़ा बना और दुहने का पात्र क्या था?

प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् ।
तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥ ४॥

शब्दार्थ

प्रकृत्या—स्वभाव से; विषमा—ऊँची-नीची; देवी—पृथ्वी; कृता—किया गया; तेन—उसके द्वारा; समा—समतल; कथम्—कैसे; तस्य—उसका; मेध्यम्—यज्ञ में बलि के हेतु; हयम्—घोड़ा; देवः—इन्द्रदेव; कस्य—किस; हेतोः—लिए; अपाहरत्—चुरा लिया।

पृथ्वी की सतह स्वभावतः कहीं ऊँची है, तो कहीं नीची। तो फिर राजा पृथु ने पृथ्वी की सतह को कैसे समतल बनाया, और स्वर्ग के राजा इन्द्र ने यज्ञ के घोड़े को क्यों चुराया?

सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तमात् ।
लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥ ५॥

शब्दार्थ

सनत्-कुमारात्—सनत्कुमार से; भगवतः—परम शक्तिमान; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; ब्रह्म-वित्-उत्तमात्—वैदिक ज्ञान में दक्ष; लब्ध्वा—प्राप्त करके; ज्ञानम्—ज्ञान; स-विज्ञानम्—व्यावहारिक प्रयोग के लिए; राज-ऋषिः—परम साधु राजा ने; काम्—कौन सी; गतिम्—पद; गतः—प्राप्त किया।

महान् साधु राजा, महाराज पृथु, ने परम वैदिक विद्वान सनत्कुमार से ज्ञान प्राप्त किया। अपने जीवन में इस ज्ञान को व्यवहृत करने के लिए ज्ञान प्राप्त करके उस राजा ने इच्छित गंतव्य किस प्रकार प्राप्त किया?

तात्पर्य : वैष्णवों के चार सम्प्रदाय हैं। ये चारों क्रमशः श्री ब्रह्मा, ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी, सनत्कुमार इत्यादि कुमारों तथा शिवजी से उत्पन्न हैं। ये चारों सम्प्रदाय अभी भी चल रहे हैं। जैसा राजा पृथु ने दिखला दिया है, जो दिव्य ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक हो उसे इन चार सम्प्रदायों में से किसी को गुरु मानना चाहिए। कहा गया है कि जब तक इन सम्प्रदायों में से किसी एक से मंत्र नहीं ग्रहण किया जाता, तब तक कलियुग में वह मंत्र काम नहीं करता। अब तो अनेक अनधिकृत सम्प्रदायों का उदय हो चुका है और वे अनधिकृत मंत्र प्रदान करके जनता को गुमराह कर रहे हैं। इन तथाकथित

सम्प्रदायों के धूर्तजन वैदिक विधि-विधानों का पालन नहीं करते। वे सभी प्रकार के पाप-कर्मों में रत रहते हुए लोगों को मंत्र देकर उन्हें दिग्भ्रमित करते रहते हैं। किन्तु बुद्धिमान लोग जानते हैं कि ये मंत्र कभी फलित नहीं होते, अत: वे उन नए सम्प्रदायों को प्रश्रय नहीं देते। लोगों को इन व्यर्थ के सम्प्रदायों से सावधान रहना चाहिए। इन्द्रिय-तृप्ति के लिए कुछ सुविधा प्राप्त करने के लिए, इस युग के अभागे लोग इन तथाकथित सम्प्रदायों से मंत्र लेते हैं। किन्तु पृथु महाराज ने निजी उदाहरण से यह दिखला दिया कि मनुष्य को प्रामाणिक सम्प्रदाय से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अत: महाराज पृथु ने सनत्कुमार को अपने गुरु रूप में स्वीकार किया।

यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान्भगवत: प्रभो: ।
श्रव: सुश्रवस: पुण्यं पूर्वदेहकथाश्रयम् ॥ ६ ॥
भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च ।
वक्तुमर्हसि योऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; च—तथा; अन्यत्—दूसरा; अपि—निश्चय ही; कृष्णस्य—कृष्ण का; भवान्—आप; भगवत:—भगवान् का; प्रभो:—शक्तिशाली; श्रव:—महिमामय कार्य; सु-श्रवस:—जो सुनने में अत्यन्त मधुर लगे; पुण्यम्—पवित्र; पूर्व-देह—अपने पूर्व अवतार का; कथा-आश्रयम्—कथा से सम्बन्धित; भक्ताय—भक्त के लिए; मे—मुझको; अनुरक्ताय—अत्यन्त ध्यानमग्न; तव—तुम्हारा; च—तथा; अधोक्षजस्य—भगवान् का जो अधोक्षज कहलाते हैं; च—और; वक्तुम् अर्हसि—सुनाएँ; य:—जिसने; अदुह्यत्—दुहा; वैन्य-रूपेण—राजा वेन के पुत्र रूप में; गाम्—गाय रूपी पृथ्वी को; इमाम्—इस।

पृथु महाराज भगवान् कृष्ण की शक्तियों के शक्त्यावेश अवतार थे। फलत: उनके कार्यों से सम्बन्धित कोई भी कथा सुनने में मनभावन लगती है और कल्याणकर होती है। मैं तो आपका तथा अधोक्षज भगवान् का भी भक्त हूँ। अत: आप उन राजा पृथु की सभी कथाएँ सुनाएँ जिन्होंने राजा वेन के पुत्र के रूप में गोरूप धरती का दोहन किया।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण को अवतारी भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है, "जिनसे समस्त अवतार उद्भूत होते हैं।" *भगवद्गीता* (१०.८) में भगवान् कृष्ण कहते हैं—*अहं सर्वस्य प्रभवो मत्त: सर्वं प्रवर्तते*—मैं समस्त आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों का उद्गम हूँ, हर वस्तु मुझी से उद्भूत है। इस प्रकार भगवान् कृष्ण प्रत्येक प्राणी की उत्पत्ति के मूल हैं। जहाँ तक इस भौतिक जगत का प्रश्न है, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ये सभी कृष्ण से ही उत्पन्न हैं। कृष्ण के ये तीनों अवतार *गुण-अवतार* कहलाते

हैं। यह भौतिक जगत प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा संचालित है और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव क्रमश: सतो, रजो तथा तमो गुणों का भार सँभालते हैं। महाराज पृथु भगवान् कृष्ण के उन गुणों के भी अवतार हैं जिनसे बद्धजीवों के ऊपर शासन किया जाता है।

इस श्लोक में आगत *अधोक्षज* शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है और इस का अर्थ है, ''भौतिक इन्द्रियों के बोध से परे।'' भगवान् को चिन्तन द्वारा नहीं समझा जा सकता, अत: अल्पज्ञानी तो भगवान् को समझ ही नहीं सकता। चूँकि अपनी भौतिक इन्द्रियों के सहारे मनुष्य ईश्वर का निर्गुण रूप ही निर्मित कर सकता है इसलिए भगवान् अधोक्षज कहलाते हैं।

सूत उवाच
चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथां प्रति ।
प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेय: प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सूत: उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; चोदित:—प्रोत्साहित; विदुरेण—विदुर के द्वारा; एवम्—इस प्रकार; वासुदेव—भगवान् कृष्ण की; कथाम्—कथा के; प्रति—विषय में; प्रशस्य—प्रशंसा करके; तम्—उसको; प्रीत-मना:—अत्यधिक प्रसन्न होकर; मैत्रेय:—मैत्रेय ने; प्रत्यभाषत—उत्तर दिया।

सूत गोस्वामी ने आगे कहा : कि जब विदुर को भगवान् कृष्ण के विविध अवतारों के कार्यकलापों को सुनने की प्रेरणा प्राप्त हुई तो मैत्रेय ने विदुर की प्रशंसा की क्योंकि वे स्वयं उनसे प्रोत्साहित और अत्यधिक प्रसन्न थे। तब मैत्रेय ने इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : *कृष्ण कथा* अथवा उनके अवतारों की चर्चा आध्यात्मिक रूप से इतनी प्रेरणाप्रद होती है कि वक्ता तथा श्रोता कभी थकते नहीं। आध्यात्मिक वार्ताओं की यही प्रकृति है। हमने वास्तव में देखा है कि मनुष्य विदुर तथा मैत्रेय की वार्ताओं को सुनते कभी अघाता नहीं। दोनों ही भक्त हैं और विदुर जितना ही पूछते हैं, मैत्रेय बोलने के लिए उतनी ही अधिक प्रेरणा प्राप्त करते हैं। आध्यात्मिक चर्चा का लक्षण ही है कि कोई थकान का अनुभव नहीं करता। इस प्रकार विदुर के प्रश्नों को सुनकर महर्षि मैत्रेय कुंठित नहीं, अपितु विस्तार से बताने के लिए प्रोत्साहित हुए।

मैत्रेय उवाच
यदाभिषिक्त: पृथुरङ्ग विप्रै-

रामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ।
प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य
क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ऋषि ने कहा; यदा—जब; अभिषिक्तः—गद्दी पर बिठा दिये गये; पृथुः—राजा पृथु; अङ्ग—हे विदुर; विप्रैः—ब्राह्मणों के द्वारा; आमन्त्रितः—घोषित; जनतायाः—प्रजा का; च—भी; पालः—रक्षक; प्रजाः—नागरिक; निरन्ने—बिना अन्न के; क्षिति-पृष्ठे—पृथ्वी की सतह पर; एत्य—पास आकर; क्षुत्—भूख से; क्षाम—दुर्बल; देहाः—उनके शरीर; पतिम्—रक्षक से; अभ्यवोचन्—कहा।

मैत्रेय ने आगे कहा : हे विदुर, जब ब्राह्मणों तथा ऋषियों ने राजा पृथु को राजसिंहासन पर बिठाया दिया तथा उन्हें नागरिकों का रक्षक घोषित किया तो उस समय अन्न का अभाव था। नागरिक भूख के मारे सूख कर काँटा हो गये थे, अतः वे राजा के समक्ष आये और उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति कह सुनाई।

तात्पर्य : यहाँ पर ब्राह्मणों द्वारा राजा के चुनाव के सम्बन्ध में जानकारी दी गई है। वर्णाश्रम-पद्धति के अनुसार ब्राह्मणों को समाज का प्रधान माना जाता है और इसलिए उन्हें सर्वोच्च सामाजिक स्थान प्राप्त है। वर्णाश्रम धर्म अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से बनाया गया है, जिसमें चार वर्ण तथा चार आश्रम हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, वर्णाश्रम धर्म मानव-कृत नहीं है, वरन् यह ईश्वर-कृत संस्था है। इस कथानक से यह स्पष्ट सूचित होता है कि राज-सत्ता को ब्राह्मण ही नियंत्रित करते थे। जब वेन जैसा दुष्ट राजा राज्य करता तो ब्राह्मण उसे अपनी शक्ति से मार डालते और योग्यता की परीक्षा करके दूसरा राजा चुनते थे। दूसरे शब्दों में, ब्राह्मण, बुद्धिमानजन या ऋषि राज्य-सत्ता पर नियंत्रण रखते थे। यहाँ पर हमें संकेत मिलता है कि ब्राह्मणों ने किस प्रकार राजा पृथु को प्रजा के रक्षक के रूप में सिंहासन पर बिठाया। प्रजा भूख के मारे दुर्बल हो जाने के कारण राजा के पास आई और उन्होंने सूचित किया कि उचित कार्यवाही की जाये। वर्णाश्रम धर्म की संरचना इतनी उत्तम थी कि ब्राह्मण राज्य के अध्यक्ष का पथ-प्रदर्शन करते थे। तब राज्याध्यक्ष प्रजा की रक्षा करता था। क्षत्रिय जनता की रक्षा का भार सँभालते थे और क्षत्रियों के संरक्षण में वैश्य गायों की रक्षा करते, अन्न उत्पन्न करते और उसका वितरण करते थे। शूद्र अर्थात् कामकाज करनेवाला वर्ग तीनों उच्च जातियों की सहायता शारीरिक श्रम द्वारा करता था। यह अत्यन्त सुचारु सामाजिक पद्धति है।

वयं राजञ्जाठरेणाभितप्ता
यथाग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः ।
त्वामद्य याताः शरणं शरण्यं
यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥ १० ॥
तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं
क्षुधार्दितानां नरदेवदेव ।
यावन्न नङ्क्ष्यामह उज्झितोर्जा
वार्तापतिस्त्वं किल लोकपालः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; राजन्—हे राजा; जाठरेण—भूख की ज्वाला से; अभितप्ताः—अत्यन्त त्रस्त; यथा—जिस प्रकार; अग्निना—आग से; कोटर-स्थेन—पेड़ के कोटर में; वृक्षाः—वृक्ष; त्वाम्—तुम तक; अद्य—आज; याताः—हम आये हैं; शरणम्—शरण; शरण्यम्—शरण लेने के योग्य; यः—जो; साधितः—नियुक्त; वृत्ति-करः—रोजगार देने वाला; पतिः—स्वामी; नः—हमारे; तत्—अतः; नः—हमको; भवान्—आप; ईहतु—प्रयत्न करो; रातवे—देने के लिए; अन्नम्—अनाज; क्षुधा—भूख से; अर्दितानाम्—कष्ट भोगते हुए; नर-देव-देव—हे समस्त राजाओं के परम स्वामी; यावत् न—जब तक नहीं; नङ्क्ष्यामहे—हम मर जाएंगे; उज्झित—विहीन; ऊर्जाः—अन्न; वार्ता—व्यवसाय का; पतिः—देनेवाला; त्वम्—तुम; किल—निस्सन्देह; लोक-पालः—जनता के रक्षक।

हे राजन्, जिस प्रकार वृक्ष के कोटर में लगी आग वृक्ष को धीरे-धीरे सुखा देती है, उसी प्रकार हम जठराग्नि (भूख) से सूख रहे हैं। आप शरणागत जीवों के रक्षक हैं और आप हमें वृत्ति (जीविका) देने के लिए नियुक्त हुए हैं। अतः हम सभी आपके संरक्षण में आये हैं। आप केवल राजा ही नहीं हैं, आप भगवान् के अवतार भी हैं। वास्तविक रूप में आप राजाओं के राजा हैं। आप हमें सभी प्रकार की जीविकाएँ प्रदान कर सकते हैं, क्योंकि आप हमारी जीविका के स्वामी हैं। अतः हे राजराजेश्वर, उचित अन्न वितरण के द्वारा हमारी भूख को शान्त करने की व्यवस्था कीजिये। आप हमारी रक्षा करें जिससे हम अन्न के अभाव से मरें नहीं।

तात्पर्य : यह देखना राजा का कर्तव्य है कि सामाजिक व्यवस्था में राज्य के हर एक व्यक्ति—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—पूरी तरह से काम में लगे हुए हैं। जिस प्रकार ब्राह्मणों का यह कर्तव्य है कि वे राजा चुनें, उसी प्रकार राजा का कर्तव्य है कि वह देखे कि चारों वर्ण के लोग अपने-अपने व्यवसाय में रत हैं। यहाँ पर यह इंगित किया गया है कि यद्यपि लोगों को अपना कर्तव्य निभाने की अनुमति थी, किन्तु तो भी बेरोजगारी थी। यथापि वे लोग आलसी न थे तो भी वे अपनी भूख बुझाने के लिए पर्याप्त अन्नोत्पादन नहीं कर पा रहे थे। जब लोग इस प्रकार व्यथित हों तो उन्हें चाहिए कि शासनाध्यक्ष के पास पहुँचें और राजा या अध्यक्ष को चाहिए कि लोगों के दुख का शमन करने के लिए

तत्काल उपाय करे।

मैत्रेय उवाच
पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवितम् ।
दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सोऽन्वपद्यत ॥ १२॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; पृथुः—राजा पृथु; प्रजानाम्—नागरिकों की; करुणम्—दयनीय स्थिति; निशम्य—सुनकर; परिदेवितम्—विलाप; दीर्घम्—दीर्घकाल तक; दध्यौ—विचार किया; कुरु-श्रेष्ठ—हे विदुर; निमित्तम्—कारण; सः—उसने; अन्वपद्यत—ढूँढ लिया।

नागरिकों के इस शोकालाप को सुनकर तथा उनकी दयनीय स्थिति देखकर राजा ने दीर्घकाल तक इस विषय पर विचार किया कि क्या वह मूलभूत कारणों को खोज सकता है?

इति व्यवसितो बुद्ध्या प्रगृहीतशरासनः ।
सन्दधे विशिखं भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा ॥ १३॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; व्यवसितः—निष्कर्ष पर पहुँच कर; बुद्ध्या—बुद्धि से; प्रगृहीत—धारण किये हुए; शरासनः—धनुष; सन्दधे—चढ़ाया; विशिखम्—बाण; भूमेः—पृथ्वी पर; क्रुद्धः—क्रोध से पूर्ण; त्रि-पुर-हा—शिवजी; यथा—मानो।

ऐसा निश्चय करके, राजा ने अपना धनुष-बाण उठाया और उन्हें पृथ्वी की ओर उसी प्रकार लक्षित किया जिस प्रकार शिवजी क्रोध से सारे जगत का विनाश कर देते हैं।

तात्पर्य : राजा पृथु को अन्नाभाव का कारण ज्ञात हो गया था। उन्हें पता चल गया था कि इसमें नागरिकों का दोष न था, क्योंकि वे अपना कार्य करने में आलसी न थे, अपितु पृथ्वी पर्याप्त अन्न उत्पन्न नहीं कर रही थी। इससे सूचित होता है कि यदि उचित व्यवस्था हो जाय तो पृथ्वी प्रचुर उत्पादन कर सकती है, किन्तु कभी-कभी विभिन्न कारणों से पृथ्वी अन्नोत्पादन नहीं भी कर सकती। यह मत, कि जनसंख्या में वृद्धि के कारण अन्नाभाव हो जाता है, सन्तोषजनक नहीं है। ऐसे अन्य कारण हैं जिनसे पृथ्वी प्रचुर उत्पादन कर सकती है या उसे बन्द कर सकती है। राजा पृथु ने सही कारणों का पता लगा कर तुरन्त ही आवश्यक कदम उठाये।

प्रवेपमाना धरणी निशाम्योदायुधं च तम् ।
गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता ॥ १४॥

शब्दार्थ

प्रवेपमाना—काँपते हुए; धरणी—पृथ्वी; निशाम्य—देखकर; उदायुधम्—धनुष-बाण लेकर; च—भी; तम्—राजा को; गौः—गाय; सती—बन कर; अपाद्रवत्—भागने लगी; भीता—अत्यधिक डरी हुई; मृगी इव—हिरनी के समान; मृगयु—शिकारी द्वारा; द्रुता—पीछा की गई।

जब पृथ्वी ने देखा कि राजा पृथु उसे मारने के लिए धनुष-बाण धारण कर रहे हैं, तो वह भय के मारे काँपने लगी। उसके बाद वह उसी प्रकार भागी जिस प्रकार शिकारी द्वारा पीछा किये जाने पर हिरनी तेजी से भागती है। राजा के भय से पृथ्वी ने गाय का रूप धारण कर लिया और भागने लगी।

तात्पर्य : जिस प्रकार माता की कोख से बालक तथा बालिकाएँ उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार धरती की कुक्षि से विभिन्न रूपों में सभी प्रकार की जीवात्माएँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार माता पृथ्वी अनन्त रूप धारण कर सकती है। इस बार पृथु के क्रोध से बचने के लिए पृथ्वी ने गाय का रूप धारण किया। चूँकि गाय अवध्य है, अत: पृथ्वी ने ठीक ही समझा कि पृथु के तीरों से बचने के लिए गाय का रूप धारण किया जाये। किन्तु पृथु इस रहस्य को समझ गये, अत: उन्होंने गोरूप पृथ्वी का पीछा करना नहीं छोड़ा।

तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः ।
शरं धनुषि सन्धाय यत्र यत्र पलायते ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

ताम्—गोरूप पृथ्वी का; अन्वधावत्—पीछा किया; तत्—तब; वैन्यः—राजा वेन के पुत्र ने; कुपितः—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; अति-अरुण—अत्यन्त लाल-लाल; ईक्षणः—आँखें; शरम्—तीर; धनुषि—धनुष पर; सन्धाय—रखकर; यत्र यत्र—जहाँ-जहाँ; पलायते—वह भागती।

यह देखकर महाराज पृथु अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उनकी आँखें प्रातःकालीन सूर्य की भाँति लाल-लाल हो गईं। अपने धनुष पर बाण चढ़ाये वे जहाँ-जहाँ गोरूप पृथ्वी दौड़कर जाती, वहीं-वहीं उसका पीछा करते रहे।

सा दिशो विदिशो देवी रोदसी चान्तरं तयोः ।
धावन्ती तत्र तत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सा—वह गोरूप पृथ्वी; दिशः—चारों दिशाओं में; विदिशः—इधर-उधर; देवी—देवी; रोदसी—आकाश तथा पृथ्वी की ओर; च—भी; अन्तरम्—मध्य में; तयोः—उनके; धावन्ती—दौड़ती हुई; तत्र तत्र—जहाँ-जहाँ; एनम्—राजा को; ददर्श—देखा; अनु—पीछे; उद्यत—ग्रहण किये; आयुधम्—अपने हथियार।

गोरूप पृथ्वी स्वर्ग तथा पृथ्वी के बीच अन्तरिक्ष में इधर-उधर दौड़ने लगी और जहाँ भी वह जाती, राजा अपना धनुष-बाण लिए उसका पीछा करते रहे।

लोके नाविन्दत त्राणं वैन्यान्मृत्योरिव प्रजाः ।
त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥ १७॥

शब्दार्थ

लोके—तीनों लोकों में; न—नहीं; अविन्दत—प्राप्त करा सका; त्राणम्—मुक्ति; वैन्यात्—राजा वेन के पुत्र के हाथों से; मृत्योः—मृत्यु से; इव—सदृश; प्रजाः—लोग; त्रस्ता—अत्यन्त भयभीत; तदा—उस काल; निववृते—पीछे मुड़ी; हृदयेन—अपने हृदय में; विदूयता—अत्यन्त दुखित।

जिस प्रकार मनुष्य मृत्यु के क्रूर हाथों से नहीं बच सकता, उसी प्रकार गोरूप पृथ्वी वेन के पुत्र से नहीं बच सकी। अन्त में पृथ्वी भयभीत होकर और दुखित हृदय से असहायावस्था में पीछे की ओर मुड़ी।

उवाच च महाभागं धर्मज्ञापन्नवत्सल ।
त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् ॥ १८॥

शब्दार्थ

उवाच—उसने कहा; च—तथा; महा-भागम्—महान् भाग्यशाली राजा के प्रति; धर्म-ज्ञ—हे धर्म के नियमों के ज्ञाता; आपन्न-वत्सल—हे शरणागत के शरण; त्राहि—बचाओ; माम्—मुझको; अपि—निस्सन्देह; भूतानाम्—जीवात्माओं के; पालने—संरक्षण में; अवस्थितः—स्थित; भवान्—आप।

परम ऐश्वर्यवान् राजा पृथु को धर्म के ज्ञाता तथा शरणागतों के आश्रय के रूप में सम्बोधित करते हुए उसने कहा—कृपया मुझे बचाइये। आप समस्त जीवात्माओं के रक्षक हैं। अब आप इस लोक के राजा के रूप में पदस्थ हैं।

तात्पर्य : गोरूप पृथ्वी ने राजा पृथु को धर्मज्ञ अर्थात् धार्मिक नियमों का जाननेवाला कह कर सम्बोधित किया। धर्म के नियम आदेश देते हैं कि राजा या अन्य किसी के द्वारा स्त्री, गाय, शिशु, ब्राह्मण तथा वृद्ध की रक्षा की जानी चाहिए। फलतः पृथ्वी माता ने गाय का रूप धारण कर लिया। वह भी स्त्री थी। इसीलिए उसने राजा को धर्मज्ञ कहा। धार्मिक नियम यह भी आदेश देते हैं कि शरणागत का वध न किया जाय। उसने राजा पृथु को याद दिलाया कि वह न केवल ईश्वर का अवतार था, अपितु

वह पृथ्वी का राजा भी था। अत: उसका धर्म था कि वह उसे क्षमा कर दे।

स त्वं जिघांससे कस्माद्दीनामकृतकिल्बिषाम् ।
अहनिष्यत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मत: ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

स:—वही व्यक्ति; त्वम्—तुम; जिघांससे—मारना चाहते हो; कस्मात्—क्यों; दीनाम्—दीना को; अकृत—निरपराध, बिना कुछ किये; किल्बिषाम्—कोई पापमय कर्म; अहनिष्यत्—मारोगे; कथम्—कैसे; योषाम्—स्त्री को; धर्म-ज्ञ:—धर्म को जाननेवाला; इति—इस प्रकार; य:—जो; मत:—माना जाता है।

गोरूप पृथ्वी राजा से अनुनय-विनय करती रही—मैं अत्यन्त दीन हूँ और मैंने कोई पापकर्म नहीं किया। तो फिर आप मुझे क्यों मारना चाहते हैं? आप धर्म के नियमों को जाननेवाले हैं, तो फिर आप क्यों मुझसे द्वेष रख रहे हैं और क्यों एक स्त्री को मारने के लिए इस प्रकार उद्यत हैं?

तात्पर्य : पृथ्वी ने राजा से दो प्रकार से याचना की। धर्मज्ञ राजा उस व्यक्ति का, जिसने कोई पापकर्म नहीं किया, वध नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त, स्त्री अवध्य है, भले ही उसने किसी तरह का पाप क्यों न किया हो। चूँकि पृथ्वी निर्दोष थी और स्त्री थी, अत: राजा को उसे नहीं मारना चाहिए था।

प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृताग:स्वपि जन्तव: ।
किमुत त्वद्विधा राजन्करुणा दीनवत्सला: ॥ २० ॥

शब्दार्थ

प्रहरन्ति—मारते हैं; न—नहीं; वै—निश्चय ही; स्त्रीषु—स्त्रियों को; कृत-आग:सु—पापकर्म करने पर; अपि—यद्यपि; जन्तव:—मानव प्राणी; किम् उत—फिर क्या कहा जाये; त्वत्-विधा:—तुम्हारे समान महापुरुष; राजन्—हे राजा; करुणा:—दयालु; दीन-वत्सला:—दीनों के प्रति स्नेहिल।

यदि स्त्री कोई पापकर्म भी करे तो मनुष्य को उस पर हाथ नहीं उठाना चाहिए। हे राजन्, आप तो इतने दयालु हैं कि आपके विषय में क्या कहा जाये? आप रक्षक हैं और दीनवत्सल हैं।

मां विपाट्याजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् ।
आत्मानं च प्रजाश्चेमा: कथमम्भसि धास्यसि ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; विपाट्य—खण्ड-खण्ड करके; अजराम्—अत्यन्त दृढ़; नावम्—नाव; यत्र—जहाँ; विश्वम्—समस्त संसार की सामग्री; प्रतिष्ठितम्—खड़ी हुई; आत्मानम्—अपने आपको; च—तथा; प्रजा:—अपनी प्रजा; च—भी; इमा:—ये सारे; कथम्—कैसे; अम्भसि—जल में; धास्यसि—धारण करोगे।

गोरूप पृथ्वी ने आगे कहा : हे राजन्, मैं एक सुदृढ़ नाव के तुल्य हूँ और समस्त संसार की सारी सामग्री मुझी पर टिकी है। यदि आप मुझे छिन्न कर देंगे तो फिर आप अपने को तथा अपनी प्रजा को डूबने से किस प्रकार बचा पायेंगे?

तात्पर्य : सम्पूर्ण लोक के नीचे *गर्भजल* है। भगवान् विष्णु इसी *गर्भजल* पर शयन करते हैं और उनकी नाभि से एक कमलनाल निकलता है और इस ब्रह्माण्ड के भीतर सभी लोक वायु में तैर रहे हैं, जो इस कमलनाल पर आश्रित हैं। यदि कोई भी लोक नष्ट कर दिया जाए तो वह *गर्भजल* में गिरेगा। अत: पृथ्वी ने राजा पृथु को आगाह किया कि उसे विनष्ट करने से राजा को कुछ नहीं प्राप्त होगा। सचमुच वह अपने आपको तथा अपनी प्रजा को इस *गर्भजल* में डूबने से कैसे बचा सकेगा? दूसरे शब्दों में, अन्तरिक्ष की तुलना वायु के सागर से की जा सकती है और प्रत्येक लोक इसमें उसी प्रकार तैर रहा है, जिस प्रकार कोई नौका या द्वीप समुद्र में तैरता है। लोकों को कभी द्वीप कहा जाता है और कभी नाव। इस प्रकार गोरूप पृथ्वी द्वारा दृश्य जगत की आंशिक व्याख्या कर दी गई है।

पृथुरुवाच

वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोति च नो वसु ॥ २२॥

शब्दार्थ

पृथुः उवाच—पृथु ने उत्तर दिया; वसु-धे—हे पृथ्वी; त्वाम्—तुमको; वधिष्यामि—मार डालूँगा; मत्—मेरा; शासन—आदेश; पराक्-मुखीम्—अवज्ञा करके; भागम्—अपना अंश; बर्हिषि—यज्ञ में; या—जो; वृङ्क्ते—स्वीकार करती है; न—नहीं; तनोति—देती है; च—तथा; नः—हमको; वसु—उपज।

राजा पृथु ने पृथ्वी को उत्तर दिया: हे पृथ्वी, तुमने मेरी आज्ञा तथा नियमों का उल्लंघन किया है। तुमने हमारे द्वारा सम्पन्न यज्ञों में देवता के रूप में अपना अंश ग्रहण किया है, किन्तु बदले में पर्याप्त अन्न नहीं उत्पन्न किया। इस कारण मैं तुम्हारा वध कर दूँगा।

तात्पर्य : गोरूप पृथ्वी ने कहा कि वह न केवल स्त्री है, वरन् निर्दोष और निष्पाप भी है। अत: उसने तर्क किया कि उसका वध नहीं किया जाना चाहिए। साथ ही, उसने यह भी संकेत किया कि राजा धर्मज्ञ होता है, अत: उसे धार्मिक नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए जो स्त्री-वध को वर्जित बताते हैं। उत्तर में महाराज पृथु ने कहा कि पहली बात तो यह कि पृथ्वी ने उसके आदेशों का उल्लंघन

किया है। यह उसका पहला आपराधिक कृत्य है। दूसरे यह कि वह अपना यज्ञ-भाग ग्रहण करती रही है, किन्तु बदले में उसने पर्याप्त अन्न नहीं उत्पन्न किया।

यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौधसं पयः ।
तस्यामेवं हि दुष्टायां दण्डो नात्र न शस्यते ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

यवसम्—हरी घास; जग्धि—चरती हो; अनुदिनम्—प्रतिदिन; न—कभी नहीं; एव—निश्चय ही; दोग्धि—देती हो; औधसम्—थन में; पयः—दूध; तस्याम्—जब एक गाय; एवम्—इस प्रकार; हि—निश्चय ही; दुष्टायाम्—अपराधी होकर; दण्डः—दण्ड, सजा; न—नहीं; अत्र—यहाँ; न—नहीं; शस्यते—उचित।

यद्यपि तुम नित्य ही हरी घास चरती हो, किन्तु तुम हमारे उपयोग के लिए अपने थन को दूध से भरती नहीं हो। चूँकि तुम जान-बूझ कर अपराध कर रही हो, अतः तुम्हारे द्वारा गाय का रूप धारण करने के कारण तुम्हें दण्ड देना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

तात्पर्य : गाय चरागाह की हरी-हरी घास चरती है और अपने थन को पर्याप्त मात्रा में दूध से भरती है, जिसे ग्वाले दोह सकें। यज्ञ इसलिए किये जाते हैं कि प्रचुर बादल बनें और पृथ्वी पर वर्षा करें। *पयः* शब्द से दूध तथा जल दोनों ही अर्थ ग्रहण होते हैं। देवता के रूप में पृथ्वी अपना यज्ञ-भाग तो ग्रहण करती थी—अर्थात् हरी-हरी घास चरती थी—किन्तु बदले में वह प्रचुर अन्न नहीं उत्पन्न कर रही थी, अर्थात् वह अपने थन को दूध से पूरित नहीं कर रही थी। अतः पृथु महाराज उसके अपराध के लिए उसे दण्ड देने की धमकी ठीक ही थी।

त्वं खल्वोषधिबीजानि प्राक्सृष्टानि स्वयम्भुवा ।
न मुञ्चस्यात्मरुद्धानि मामवज्ञाय मन्दधीः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; खलु—निश्चय ही; ओषधि—जड़ी-बूटियों तथा अन्नों के; बीजानि—बीज; प्राक्—पूर्वकाल में; सृष्टानि—उत्पन्न; स्वयम्भुवा—ब्रह्मा द्वारा; न—नहीं; मुञ्चसि—देती हो; आत्म-रुद्धानि—अपने भीतर छिपाये हुए; माम्—मुझको; अवज्ञाय—आज्ञा का पालन न करके; मन्द-धीः—अल्प बुद्धि वाली।

तुमने इस तरह अपनी बुद्धि गँवा दी है कि मेरी आज्ञा के होते हुए भी तुम जड़ी-बूटियों तथा अन्नों के बीज नहीं दे रही हो, जिन्हें पूर्वकाल में ब्रह्मा ने उत्पन्न किया था और जो तुम्हारे भीतर छिपे हुए हैं।

तात्पर्य : इस ब्रह्माण्ड में लोकों की सृष्टि करते समय ब्रह्माजी ने विविध अन्नों, जड़ी-बूटियों, पौधों तथा वृक्षों के बीज भी उत्पन्न किये। जब बादल प्रचुर जल बरसाते हैं, तो बीज उगकर फल, अन्न, शाक इत्यादि उत्पन्न करते हैं। पृथु महाराज अपना उदाहरण देते हुए यह संकेत देते हैं कि जब भी अन्न का अभाव हो तो सरकार के अध्यक्ष को चाहिए कि वह देखे कि उत्पादन क्यों रुका हुआ है और उसे ठीक करने के लिए क्या कदम उठाए जाएँ।

अमूषां क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् ।
शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तव मेदसा ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

अमूषाम्—उन सबों का; क्षुत्-परीतानाम्—भूख से पीड़ितों का; आर्तानाम्—दुखियों का; परिदेवितम्—क्रन्दन, विलाप; शमयिष्यामि—शमन करूँगा; मत्-बाणैः—मेरे बाणों से; भिन्नायाः—खण्ड-खण्ड करके; तव—तुम्हारे; मेदसा—मांस से।

अब मैं अपने बाणों से तुम्हारा खण्ड-खण्ड कर दूँगा और तुम्हारे मांस से क्षुधार्त नागरिकों को, जो अन्न के अभाव में त्राहि-त्राहि कर रहे हैं, सन्तुष्ट करूँगा। इस प्रकार मैं अपने राज्य की प्रजा का बिलखना दूर करूँगा।

तात्पर्य : यहाँ पर हमें थोड़ा संकेत मिलता है कि सरकार किस प्रकार गोमांस खाने की व्यवस्था करे। यहाँ पर इंगित है कि विरली परिस्थिति में जब अन्न न हो तो सरकार गोमांस खाने की अनुमति दे। किन्तु जब पर्याप्त खाद्यान्न हों तो सरकार को चाहिए कि केवल जीभ के स्वाद के लिए गोमांस खाने की अनुमति न दे। दूसरे शब्दों में, विरली परिस्थितियों में जब अन्नाभाव हो तभी मांसाहार की अनुमति दी जाये, अन्यथा नहीं। सरकार को जीभ की तुष्टि के लिए बूचड़खानों को बनाये रखना और वृथा ही पशुओं के वध की स्वीकृति देना उचित नहीं।

जैसाकि पिछले श्लोक में वर्णन हुआ है, गायों तथा अन्य पशुओं को खाने के लिए पर्याप्त घास दी जानी चाहिए। यदि पर्याप्त घास देने पर भी गाय दूध नहीं देती और भोजन का नितान्त अभाव रहे तो सूखी (दूध न देनेवाली) गायों को भूखी जनता का पेट भरने के लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए। आवश्यकता के सिद्धान्त के अनुसार पहले तो मानव समाज को अन्न तथा शाक उपजाने का यत्न करना चाहिए, किन्तु यदि वे इसमें असफल रहें तो फिर मांसाहार करना चाहिए; अन्यथा नहीं।

आजकल मानव समाज की जैसी संरचना है, उसमें सारे संसार में पर्याप्त अन्नोत्पादन होता है। अत: बूचड़खानों के खोले जाने का अनुमोदन नहीं किया जा सकता। कुछ राष्ट्रों के पास इतना अतिरिक्त अन्न रहता है कि उसे समुद्र में फेंक दिया जाता है और कभी-कभी सरकार अधिक अन्न उपजाने पर रोक लगा देती है। कहने का तात्पर्य यह है कि पृथ्वी समूची जनसंख्या के उदर-पोषण के लिए पर्याप्त अन्न उत्पन्न करती है, किन्तु अन्न का वितरण व्यापार के नियमों से तथा लाभ कमाने की इच्छा से सीमित रहता है। फलत: कहीं अन्न का अभाव रहता है, तो कहीं अधिकता। यदि सारी पृथ्वी में अन्न-वितरण की व्यवस्था के लिए एक ही सरकार हो तो अभाव का प्रश्न ही न उठे, बूचड़खाने खोलने की आवश्यकता ही न पड़े और अधिक जनसंख्या के झूठे सिद्धान्त प्रस्तुत करने की आवश्यकता ही न रहे।

पुमान्योषिदुत क्लीब आत्मसम्भावनोऽधम: ।
भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवध: ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

पुमान्—पुरुष; योषित्—स्त्री; उत—भी; क्लीब:—नपुंसक; आत्म-सम्भावन:—अपने ही पोषण ही रुचि रखनेवाला; अधम:—नीच; भूतेषु—अन्य जीवात्माओं को; निरनुक्रोश:—बिना दया के, निर्दय; नृपाणाम्—राजाओं के लिए; तत्—उसका; वध:—वध करना, मारना; अवध:—न मारने के समान।

ऐसा कोई भी क्रूर व्यक्ति—चाहे वह पुरुष, स्त्री या नपुंसक हो—जो अपनी निजी भरण-पोषण में ही रुचि रखता है और दूसरे जीवों पर दया नहीं दिखाता, राजा द्वारा वध्य है। ऐसा वध कभी भी वास्तविक वध नहीं माना जाता।

तात्पर्य : पृथ्वी अपने स्वाभाविक रूप में स्त्री के तुल्य है, अत: उसे राजा के संरक्षण की आवश्यकता होती है। किन्तु पृथु महाराज तर्क करते हैं कि उनके राज्य का कोई नागरिक, चाहे वह पुरुष हो, स्त्री अथवा नपुंसक, यदि अपने साथी पर दयालु नहीं है, तो राजा उसका वध कर सकता है और इस वध की गणना वास्तविक वध में नहीं की जाती। जहाँ तक आध्यात्मिक कार्य-क्षेत्र की बात है, जब भक्त आत्मतुष्ट रह कर श्रीकृष्ण की महिमा का उपदेश नहीं करता तो वह प्रथमकोटि का भक्त नहीं माना जाता। जो भक्त उपदेश देने का प्रयास करता है और उन दीन-दुखियों पर दया रखता है जिन्हें श्रीकृष्ण का ज्ञान नहीं है, वह श्रेष्ठ भक्त है। भगवान् की प्रार्थना करते हुए प्रह्लाद महाराज ने कहा

था कि वे इस भौतिक जगत से अपनी मुक्ति के इच्छुक नहीं हैं, अपितु जब तक समस्त पतित आत्माओं का उद्धार नहीं हो जाता वे उस स्थिति से मुक्त नहीं होना चाहते। भौतिक क्षेत्र में भी यदि कोई व्यक्ति दूसरों का कल्याण नहीं चाहता तो भगवान् या पृथु महाराज जैसे उनके अवतार द्वारा उसकी भर्त्सना की जानी चाहिए।

त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः ।
आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥ २७॥

शब्दार्थ

त्वाम्—तुम; स्तब्धाम्—अत्यन्त गर्वीली; दुर्मदाम्—उन्मत्त; नीत्वा—ऐसी दशा में ले जाकर; माया-गाम्—छद्म गाय; तिलशः—खण्ड-खण्ड; शरैः—अपने बाणों से; आत्म—अपने; योग-बलेन—योगशक्ति से; इमाः—ये सब; धारयिष्यामि—धारण करूँगा; अहम्—मैं; प्रजाः—सभी नागरिक या जीवात्माएँ।

तुम गर्व से अत्यन्त फूली हुई हो और प्रायः उन्मत सी हो गई हो। इस समय तुमने अपनी योगशक्ति से गाय का रूप धारण कर रखा है, तो भी मैं तुम्हें अनाज की दानों की भाँन्ति खण्ड-खण्ड कर दूँगा और अपने योग-बल से सारी जनता को धारण करूँगा।

तात्पर्य : पृथ्वी ने राजापृथु से कहा था कि यदि वे उसका विनाश करेंगे तो वह तथा उसकी प्रजा गर्भ-सागर के जल में गिर जायगी। अब राजा पृथु उसका उत्तर दे रहे हैं। यद्यपि पृथ्वी ने राजा द्वारा वध किये जाने से अपनी बचने के लिए योगशक्ति के द्वारा गाय का रूप धारण लिया था, किन्तु राजा को यह तथ्य ज्ञात था और वह अन्न के छोटे टुकड़ों की भाँति उसके खण्ड-खण्ड करने में तनिक भी नहीं हिचकेगा। जहाँ तक प्रजा के विनाश की बात थी, महाराज पृथु ने बलपूर्वक कहा कि वे अपनी योगशक्ति से प्रजा को सम्भाल लेंगे। उन्हें पृथ्वी की सहायता नहीं चाहिए। भगवान् विष्णु के अवतार होने के कारण पृथु महाराज में संकर्षण की शक्ति थी, जिसे विज्ञानी जन गुरुत्वाकर्षण शक्ति कहते हैं। भगवान् असंख्य ग्रहों को अन्तरिक्ष में बिना किसी अवलम्ब के धारण किये हुए हैं; उसी प्रकार पृथु महाराज को भी अपनी प्रजा को तथा स्वयं को, पृथ्वी की सहायता लिये बिना, अन्तरिक्ष में धारण किये रहने में कोई कठिनाई न होती। भगवान् को योगेश्वर कहा गया है, फलतः राजा ने पृथ्वी को सूचित किया कि पृथ्वी की सहायता के बिना उसके स्थिर रहने के बारे में कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतान्तमिव बिभ्रतम् ।
प्रणता प्राञ्जलिः प्राह मही सञ्जातवेपथुः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मन्यु-मयीम्—अत्यधिक क्रुद्ध; मूर्तिम्—रूप; कृत-अन्तम्—साक्षात् काल (मृत्यु), यमराज; इव—सदृश; बिभ्रतम्—से युक्त; प्रणता—शरणागत; प्राञ्जलिः—हाथ जोड़े; प्राह—कहा; मही—पृथ्वी ने; सञ्जात—उत्पन्न; वेपथुः—कम्पन।

इस समय पृथु महाराज ठीक यमराज जैसे बन गये और उनका सारा शरीर अत्यन्त क्रोधित प्रतीत होने लगा। दूसरे शब्दों में, वे साक्षात् क्रोध लग रहे थे। उनके शब्द सुनकर पृथ्वी काँपने लगी। उसने आत्म-समर्पण कर दिया और हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहने लगी।

तात्पर्य : भगवान् दुष्टों के लिए साक्षात् काल तथा भक्तों के लिए परम प्रिय भगवान् रहते हैं। *भगवद्गीता* (१०.३४) में भगवान् कहते हैं—*मृत्युः सर्वहरश्चाहम्*—मैं सबको निगल लेनेवाली मृत्यु हूँ। श्रद्धाविहीन तथा न विश्वास करनेवाले लोगों का; जो भगवान् के प्राकट्य को चुनौती देते हैं, भगवान् उनके समक्ष काल रूप में प्रकट होकर उद्धार कर देंगे। उदाहरणार्थ, हिरण्यकशिपु ने भगवान् की सत्ता को चुनौती दी तो भगवान् उससे नृसिंह देव के रूप में मिले और उसका वध कर दिया। इसी प्रकार पृथ्वी ने महाराज पृथु को साक्षात् काल के समान देखा और साक्षात् क्रोध के रूप में भी। इसलिए वह काँपने लगी। भगवान् की सत्ता को किसी भी परिस्थिति में कोई चुनौती नहीं दे सकता। श्रेयस्कर यही होता है कि उनकी शरण ग्रहण की जाये और सदैव के लिए उनका संरक्षण प्राप्त किया जाये।

धरोवाच

नमः परस्मै पुरुषाय मायया
विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ।
नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुत-
द्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

धरा—पृथ्वी; उवाच—बोली; नमः—मैं नमस्कार करती हूँ; परस्मै—सत्त्व को; पुरुषाय—पुरुष को; मायया—माया से; विन्यस्त—विस्तारित; नाना—अनेक; तनवे—जिसके रूप; गुण-आत्मने—तीनों गुणों के स्रोत को; नमः—नमस्कार करती हूँ; स्वरूप—वास्तविक रूप का; अनुभवेन—समझ कर; निर्धुत—अप्रभावित; द्रव्य—पदार्थ; क्रिया—कर्म; कारक—कर्ता; विभ्रम—मोह; ऊर्मये—भवसागर की तरंगें।

पृथ्वी ने कहा : हे भगवन्, आपकी स्थिति दिव्य है और आपने अपनी माया के द्वारा तीनों

गुणों की अन्योन्य क्रिया से स्वयं को नाना रूपों तथा योनियों में विस्तारित कर रखा है। अन्य कुछ स्वामियों से भिन्न आप सदैव दिव्य स्थिति में रहते हैं और भौतिक सृष्टि द्वारा प्रभावित नहीं होते जो विभिन्न भौतिक अन्योन्य क्रियाओं से प्रभावित है। फलतः आप भौतिक कर्मों से मोहग्रस्त नहीं होते।

तात्पर्य : जब राजा पृथु ने राज्यादेश सुनाया तो पृथ्वी समझ गई कि राजा भगवान् का साक्षात् शक्त्यावेश अवतार है। फलस्वरूप राजा भूत, वर्तमान तथा भविष्य सब कुछ जानता है; अतः पृथ्वी उसे धोखा नहीं दे सकती। पृथ्वी पर आरोप लगाया गया था कि वह जड़ी-बूटियों तथा अन्नों के बीजों को छिपाये हुए है, अतः वह यह बताने जा रही थी कि उन्हें किस प्रकार पुनः प्रकट किया जा सकता है। पृथ्वी को पता था कि राजा उस पर अत्यन्त क्रुद्ध है और उसे आभास हुआ कि जब तक वह उनके क्रोध को शान्त नहीं कर लेती, तब तक उनके समक्ष कोई सकारात्मक कार्यक्रम रख पाना असम्भव था। अतः प्रारम्भ में विनीत भाव से वह अपने आपको भगवान् के शरीर के अंश रूप में प्रस्तुत करती है। वह निवेदन करती है कि भौतिक जगत में जितने भी दैहिक रूप प्रकट होते हैं, वे विराट शरीर के अंश हैं। यह कहा जाता है कि अधोलोक भगवान् के पाँव के अंश हैं और उच्चतर लोक उनके सिर के अंश हैं। भगवान् इस भौतिक जगत की सृष्टि अपनी बहिरंगा शक्ति से करते हैं, किन्तु एक प्रकार से यह बहिरंगा शक्ति उनसे भिन्न नहीं है। किन्तु साथ ही भगवान् बहिरंगा शक्ति में प्रकट नहीं होते, वरन् वे सदैव आत्म-शक्ति में स्थित होते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.१०) में कहा गया है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः*—भौतिक प्रकृति भगवान् की अध्यक्षता में कार्य कर रही है। अतः भगवान् बहिरंगा शक्ति से अनासक्त नहीं हैं। इस श्लोक में उन्हें *गुण-आत्मा* कहकर सम्बोधित किया गया है, जिसका अर्थ है भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों का स्रोत। जैसाकि *भगवद्गीता* (१३.१५) में कहा गया है—*निर्गुणं गुणभोक्तृ च*—बहिरंगा शक्ति से अनासक्त रहकर भी भगवान् उसके स्वामी हैं। इस प्रसंग में भगवान् चैतन्य के दर्शन को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है कि भगवान् एक ही समय अपनी सृष्टि के साथ एक हैं तथा भिन्न भी हैं (*अचिन्त्यभेदाभेदतत्त्व*)। पृथ्वी कहती है कि यद्यपि भगवान् बहिरंगा शक्ति से आसक्त हैं, तो भी वे *निर्धूत* हैं, वे बहिरंगा शक्ति से कर्मों से सर्वथा मुक्त हैं। भगवान् सदैव अपनी

अन्तरंगा शक्ति में स्थित रहते हैं अत: इस श्लोक में कहा गया है—*स्वरूप अनुभवेन*। भगवान् सदैव अपनी अन्तरंग शक्ति में स्थित रहते हैं, फिर भी उन्हें बहिरंगा तथा अन्तरंगा शक्तियों का पूरा ज्ञान रहता है, जिस प्रकार उनका भक्त सदैव दिव्य स्थिति में रहते हुए भौतिक शरीर से आसक्त हुए बिना भगवान् की सेवा करता है। श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं, जो भक्त सदैव भगवान् की भक्ति में लीन रहता है, वह अपनी भौतिक स्थिति की परवाह न करके सदैव मुक्त रहता है। यदि एक भक्त दिव्य बना रह सकता है, तो फिर श्रीभगवान् के लिए सर्वथा सम्भव है कि वे बहिरंगा शक्ति से आसक्त हुए बिना अन्तरंगा शक्ति में बने रहें। इस स्थिति को समझने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। जिस प्रकार भक्त अपनी भौतिक देह से मोहग्रस्त नहीं होता, उसी प्रकार भगवान् इस भौतिक जगत की बहिरंगा शक्ति से कभी भी मोहग्रस्त नहीं होते। भक्त के लिए भौतिक देह कभी व्यवधान नहीं बनती, यद्यपि वह प्राकृतिक देह में स्थित रहता है, जो अनेक भौतिक परिस्थितियों से संचालित है—यथा शरीर के भीतर पाँच प्रकार के वायु हैं तथा अनेक अंग हैं—हाथ, पाँव, जीभ, लिंग, गुदा इत्यादि और ये सब अलग-अलग ढंग से कार्य करते हैं। आत्मा अर्थात् जीवात्मा, जो कि अपनी स्थिति से परिचित होता है, निरन्तर हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे मंत्र के कीर्तन में रत रहता है। उसका शारीरिक कार्यों से कोई सरोकार नहीं रहता। यद्यपि भगवान् इस भौतिक जगत से सम्बन्धित हैं, किन्तु वे सदैव आत्म-शक्ति में स्थित रहते हैं और भौतिक जगत के कार्यों से अनासक्त बने रहते हैं। जहाँ तक भौतिक शरीर का प्रश्न है, उसमें छ: प्रकार की तरंगें अथवा लाक्षणिक भौतिक अवस्थाएँ हैं—भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा तथा मृत्यु। मुक्त जीव कभी इन छहों से कोई प्रयोजन नहीं रखता। भगवान् समस्त शक्तियों के सर्वशक्तिमान स्वामी होने के कारण बहिरंगा शक्ति से कुछ सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु वे भौतिक जगत में बहिरंगा शक्ति की प्रतिक्रियाओं से सदैव स्वतंत्र रहते हैं।

येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता
धात्रा यतोऽयं गुणसर्गसङ्ग्रहः ।
स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वरा-

डुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

येन—जिसके द्वारा; अहम्—मैं; आत्म-आयतनम्—समस्त जीवात्माओं का आश्रय; विनिर्मिता—बनाया गया; धात्रा—परमेश्वर द्वारा; यतः—कारण; अयम्—यह; गुण-सर्ग-सङ्ग्रहः—विभिन्न भौतिक तत्त्वों का मेल; सः—वह; एव—निश्चय ही; माम्—मुझको; हन्तुम्—मारने के लिए; उदायुधः—हथियार सहित उद्यत; स्वराट्—पूर्णतया स्वतंत्र; उपस्थितः—मेरे समक्ष उपस्थित; अन्यम्—अन्य; शरणम्—शरण; कम्—किसकी; आश्रये—शरण में जाऊँ।

पृथ्वी ने आगे कहा : हे भगवन्, आप भौतिक सृष्टि के पूर्ण संचालक हैं। आपने इस दृश्य जगत की तथा तीन गुणों की उत्पत्ति की है, अतः आपने मुझ पृथ्वी को बनाया है, जो समस्त जीवात्माओं की आश्रय है। फिर भी हे भगवन्, आप परम स्वतंत्र हैं। अब जबकि चूँकि आप मेरे समक्ष उपस्थित होकर मुझे अपने हथियारों से मारने के लिए उद्यत हैं, आप मुझे बताएँ कि मैं किसकी शरण गहूँ और मुझे शरण दे भी कौन सकता है?

तात्पर्य : यहाँ पर पृथ्वी पूर्ण आत्म-समर्पण के लक्षण प्रकट कर रही है। जैसाकि कहा जा चुका है कि जिसे श्रीकृष्ण मारने को उद्यत हों, भला उसे कौन बचा सकता है और जिसकी वे रक्षा करें उसको कौन मार सकता है? चूँकि भगवान् पृथ्वी को मारने के लिए उद्यत थे, अतः उसे कोई भी शरण देनेवाला नहीं था। हम सबों को भगवान् का संरक्षण प्राप्त है, अतः उचित यही होगा कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति उनकी शरण में जाये। *भगवद्गीता* (१८.६६) में भगवान् उपदेश देते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

"तू सब प्रकार के धर्मों को त्याग कर एकमात्र मेरी शरण में आ जा। मैं तेरा सम्पूर्ण पापों से उद्धार कर दूँगा, तू डर मत।"

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर गाते हैं, "हे भगवन्, जो कुछ भी मेरे पास है—यहाँ तक कि अपना मन, अपना घर, अपना शरीर, तथा इस शरीर से सम्बन्धित जो कुछ भी है, मैं अब आपको समर्पित करता हूँ। अब आप अपनी इच्छानुसार जो भी करना चाहें, उसके लिए पूर्णतः स्वतंत्र हैं। आप चाहें तो मुझे मारें और चाहें तो बचाएँ। प्रत्येक दशा में मैं आपका शाश्वत दास हूँ और आपको अधिकार है कि चाहे जो भी करें।"

य एतदादावसृजच्चराचरं
स्वमाययात्माश्रययावितर्क्यया ।
तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः
कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एतत्—ये; आदौ—सृष्टि के आरम्भ में; असृजत्—उत्पन्न किया; चर-अचरम्—जड़ तथा जंगम जीव; स्व-मायया—अपनी शक्ति से; आत्म-आश्रयया—अपने ही आश्रय में शरण प्राप्त; अवितर्क्यया—अकल्पनीय; तया—उसी माया से; एव—निश्चय ही; सः—वह; अयम्—यह राजा; किल—निश्चय ही; गोप्तुम् उद्यतः—शरण देने के लिए तैयार; कथम्—कैसे; नु—तब; माम्—मुझको; धर्म-परः—धर्मपालक; जिघांसति—मारने की इच्छा करता है।

आपने सृष्टि के प्रारम्भ में अपनी अकल्पनीय शक्ति से इन समस्त जड़ तथा चेतन जीवों को उत्पन्न किया है। अब आप उसी शक्ति से जीवात्माओं की रक्षा करने के लिए उद्यत हैं। आप धर्म के नियमों के परम रक्षक हैं। आप मुझ गोरूप को मारने के लिए इतने उत्सुक क्यों हैं?

तात्पर्य : पृथ्वी तर्क करती है कि इसमें सन्देह नहीं है कि जो सृष्टि करता है, वह अपनी इच्छा से संहार भी कर सकता है। पृथ्वी प्रश्न करती है कि, जब भगवान् हर एक प्राणी को शरण देने के लिए तैयार रहते हैं, तो फिर आप उसे क्यों मारना चाह रहे हैं? अन्ततः पृथ्वी ही समस्त जीवात्माओं की आश्रय स्थल है और पृथ्वी ही उनके लिए खाद्यान्न उत्पन्न करती है।

नूनं बतेशस्य समीहितं जनै-
स्तन्मायया दुर्जययाकृतात्मभिः ।
न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्-
योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

नूनम्—अवश्य ही; बत—निश्चय ही; ईशस्य—भगवान् का; समीहितम्—कार्य, योजना; जनैः—मनुष्यों द्वारा; तत्-मायया—उनकी शक्ति से; दुर्जयया—जो दुर्जय है; अकृत-आत्मभिः—जो अधिक अनुभवी नहीं हैं; न—कभी नहीं; लक्ष्यते—देखे जाते हैं; यः—जो; तु—तब; अकरोत्—उत्पन्न किया; अकारयत्—उत्पन्न कराया; यः—जो; अनेकः—कई; एकः—एक; परतः—अकल्पनीय शक्ति से; च—तथा; ईश्वरः—नियन्ता।

हे भगवन्, यद्यपि आप एक हैं, तो भी अपनी अकल्पनीय शक्तियों से आपने अपने को अनेक रूपों में विस्तारित कर रखा है। आपने इस ब्रह्माण्ड की रचना ब्रह्मा के माध्यम से की है। अतः आप प्रत्यक्षतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। जो लोग अधिक अनुभवी नहीं हैं, वे आपके दिव्य कार्यों को नहीं समझ सकते क्योंकि वे व्यक्ति आपकी माया से आवृत हैं।

तात्पर्य : ईश्वर एक है, किन्तु वह अनेक शक्तियों, यथा भौतिक शक्ति, आध्यात्मिक शक्ति, तटस्था

शक्ति इत्यादि में विस्तार करता है। जब तक किसी पर विशेष कृपा न हो वह नहीं समझ सकता कि इन शक्तियों के माध्यम से भगवान् किस प्रकार कार्य करते हैं। जीवात्माएँ भी भगवान् की तटस्था शक्तियाँ हैं। ब्रह्मा भी इन जीवात्माओं में से एक है, किन्तु परमेश्वर ने इन्हें विशेष शक्ति प्रदान की है। यद्यपि ब्रह्मा इस ब्रह्माण्ड के स्रष्टा माने जाते हैं, किन्तु परम स्रष्टा तो भगवान् ही हैं। इस श्लोक का *मायया* शब्द महत्त्व का है। माया का अर्थ है शक्ति। ब्रह्माजी शक्तिमय नहीं हैं, वरन् वे भगवान् की तटस्था शक्ति के प्राकट्यों में से एक हैं। कहने का तात्पर्य यह कि ब्रह्मा मात्र कर्त्ता हैं। यद्यपि कभी-कभी योजनाएँ विरोधाभासी लगती हैं, किन्तु समस्त कर्म के पीछे एक विशिष्ट योजना होती है। जो अनुभवी है और भगवान् पर जिसकी कृपा है, वह भगवान् की परम योजना को, जिसके अनुसार सारे काम हो रहे हैं, समझ सकता है।

सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभि-
र्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ।
तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये
नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

सर्ग-आदि—उत्पत्ति, पालन तथा संहार; यः—जो; अस्य—इस भौतिक जगत का; अनुरुणद्धि—उत्पन्न करता है; शक्तिभिः—अपनी ही शक्ति से; द्रव्य—भौतिक तत्त्व; क्रिया—इन्द्रियाँ; कारक—नियामक देवता; चेतना—बुद्धि; आत्मभिः—अहंकार से; तस्मै—उसको; समुन्नद्ध—प्रकट; निरुद्ध—अवरुद्ध, छिपी; शक्तये—इन शक्तियों का स्वामी; नमः—नमस्कार; परस्मै—दिव्य; पुरुषाय—भगवान् को; वेधसे—समस्त कारणों के कारण।

हे भगवन्, आप अपनी शक्तियों द्वारा भौतिक तत्त्वों, इन्द्रियों, इनके नियामक देवों, बुद्धि, अहंकार तथा प्रत्येक वस्तु के आदि कारण हैं। अपनी शक्ति से आप इस सम्पूर्ण दृश्य जगत की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। आपकी ही शक्ति से प्रत्येक वस्तु कभी प्रकट होती है और कभी प्रकट नहीं होती है। अतः आप समस्त कारणों के कारण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करती हूँ।

तात्पर्य : सभी कार्य सम्पूर्ण शक्ति अर्थात् *महत्-तत्त्व* की उत्पत्ति के साथ प्रारम्भ होते हैं। तब तीन गुणों के क्षोभ से भौतिक तत्त्वों की उत्पत्ति होती है; मन, अहंकार तथा इन्द्रियों के नियामक भी तभी उत्पन्न होते हैं। ये सब एक-एक करके भगवान् की अकल्पनीय शक्ति से प्रसूत होते हैं। आधुनिक

इलेक्ट्रानिकी में केवल एक बटन दबाने से क्रियाओं की शृंखला चालू हो जाती है, जिससे एक के बाद एक अनेक कार्य सम्पन्न होते हैं। इसी प्रकार भगवान् उत्पत्ति का बटन दबाते हैं, तो विभिन्न शक्तियाँ तत्त्वों को तथा उनके विभिन्न नियामकों को उत्पन्न करती हैं और बाद में अन्योन्य क्रियाओं से भगवान् की अकल्पनीय योजना बन जाती है।

स वै भवानात्मविनिर्मितं जगद्
भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं विभो ।
संस्थापयिष्यन्नज मां रसातला-
दभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निश्चय ही; भवान्—स्वयं; आत्म—अपने से; विनिर्मितम्—निर्मित; जगत्—जगत; भूत—भौतिक तत्त्व; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; अन्तः-करण—मन, हृदय; आत्मकम्—से बना; विभो—हे स्वामी; संस्थापयिष्यन्—पालन करते हुए; अज—हे अजन्मा; माम्—मुझको; रसातलात्—रसातल नामक अधो लोक से; अभ्युज्जहार—बाहर निकाला; अम्भसः—जल से; आदि—प्रारम्भिक; सूकरः—वराह।

हे भगवन्, आप अजन्मा हैं। एक बार आपने आदि सूकर (वराह) रूप में मुझे ब्रह्माण्ड के नीचे के जल से बाहर निकाला था। आपने संसार के पालन हेतु अपनी शक्ति से सभी भौतिक तत्त्वों, इन्द्रियों तथा मन की उत्पत्ति की है।

तात्पर्य : यहाँ पर उस समय का उल्लेख है जब श्रीकृष्ण वराह के रूप के में प्रकट हुए थे और जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार किया था। हिरण्याक्ष असुर ने धरती को इसकी कक्षा से अलग करके गर्भोदक सागर के जल में फेंक दिया था। तब भगवान् ने आदि वराह का रूप धारण करके धरती का उद्धार किया था।

अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः
प्रजा भवानद्य रिरक्षिषुः किल ।
स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो
यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥ ३५॥

शब्दार्थ

अपाम्—जल की; उपस्थे—सतह पर स्थित; मयि—मुझमें; नावि—नाव में; अवस्थिताः—खड़े हुए; प्रजाः—जीवात्माएँ; भवान्—आप; अद्य—जब; रिरक्षिषुः—रक्षा करने के इच्छुक; किल—निस्सन्देह; सः—वह; वीर-मूर्तिः—परम वीर के रूप में; समभूत्—हो गया; धरा-धरः—पृथ्वीलोक का रक्षक; यः—जो; माम्—मुझको; पयसि—दूध के लिए; उग्र-शरः—तीखे बाणों से; जिघांससि—मारना चाहते हो।

हे भगवन्, इस प्रकार आपने एक बार जल-राशि से मेरा उद्धार किया, जिससे आपका नाम धराधर, अर्थात् पृथ्वी को धारण करनेवाला पड़ा। तो भी आप इस समय, महान् वीर के रूप में अपने तीखे बाणों से मुझे मारने के लिए उद्यत हैं। किन्तु मैं तो जल की नाव के सदृश हूँ जो प्रत्येक वस्तु को तैराये रखती है।

तात्पर्य : भगवान् *धराधर* कहलाते हैं जिसका अर्थ है, ''वह जो वराह अवतार के रूप में पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर रखते हैं।'' इस प्रकार पृथ्वी भगवान् के विरोधाभासी कार्यों की बात बता रही है। यद्यपि भगवान् ने एक बार पृथ्वी की रक्षा की थी, किन्तु अब वे पृथ्वी रूपी नाव को उलटना चाह रहे हैं। भगवान् की गतिविधि को कोई नहीं समझ पाता। अल्पज्ञान के कारण मनुष्य को भगवान् की गतिविधियाँ विरोधाभासी जान पड़ती हैं।

नूनं जनैरीहितमीश्वराणा-
अस्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ।
न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभि-
स्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

नूनम्—निस्सन्देह; जनैः—जनता द्वारा; ईहितम्—कार्यकलाप, गतिविधियाँ; ईश्वराणाम्—नियन्ताओं के; अस्मत्-विधैः—मेरे सदृश; तत्—भगवान् के; गुण—भौतिक प्रकृति के गुणों का; सर्ग—सृष्टि करनेवाली; मायया—अपनी शक्ति से; न—कभी नहीं; ज्ञायते—समझे जाते हैं; मोहित—मोहग्रस्त; चित्त—जिनके मन; वर्त्मभिः—रास्ता; तेभ्यः—उनको; नमः—नमस्कार; वीर-यशः-करेभ्यः—जो वीरों को भी ख्याति प्रदान करता है।

हे भगवन्, मैं भी आपकी त्रिगुणात्मक शक्ति से उत्पन्न हूँ, फलतः मैं आपकी गतिविधियों से भ्रमित हूँ। जब आपके भक्तों के कार्यकलाप समझ के परे हैं, तो फिर आपकी लीलाओं के विषय में क्या कहा जाये? इस प्रकार प्रत्येक वस्तु हमें विरोधाभासी और आश्चर्यजनक लगती है।

तात्पर्य : भगवान् के विभिन्न रूपों तथा अवतारों के कार्यकलाप असामान्य तथा आश्चर्यजनक होते हैं। बेचारा क्षुद्र मानव इन कार्यकलापों के उद्देश्यों तथा योजनाओं को कैसे समझ सकता है? अतः श्रील जीव गोस्वामी ने कहा है कि जब तक भगवान् के कार्यों को अकल्पनीय नहीं स्वीकार कर लिया जाता, उनकी व्याख्या असम्भव है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोलोक वृन्दावन में श्रीकृष्ण के रूप में नित्य स्थित हैं। उसके साथ ही साथ उन्होंने अनेक रूपों में अपना विस्तार कर रखा है यथा राम, नृसिंह,

वराह तथा संकर्षण के अन्य प्रत्यक्ष अवतार। संकर्षण बलदेव के विस्तार हैं और बलदेव श्रीकृष्ण के प्रथम प्राकट्य हैं। इसलिए ये सभी अवतार *कला* कहलाते हैं।

ईश्वराणाम् शब्द सभी ईश्वरों का सूचक है। जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.३९) में कहा गया है—*रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्। श्रीमद्भागवत* में इसकी पुष्टि हुई है कि समस्त अवतार भगवान् के आंशिक विस्तार अर्थात् कला हैं। किन्तु श्रीकृष्ण आदि भगवान् हैं। *ईश्वराणाम्* शब्द बहुवचन है, अत: इससे यह अर्थ नहीं ग्रहण करना चाहिए कि कई ईश्वर हैं। वास्तव में ईश्वर तो एक है, किन्तु वह अनेक रूपों में अपना विस्तार करता है और अनेक प्रकार से कार्य करता है। कभी-कभी सामान्य पुरुष इससे किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और इन कार्यों को विरोधाभासी0 मानने लगता है, किन्तु ये हैं नहीं। भगवान् के समस्त कार्यकलापों के पीछे एक महान् योजना छिपी रहती है।

समझने के लिए कभी-कभी यह कहा जाता है कि भगवान् चोर के तथा गृहस्थ के भी हृदय में विद्यमान हैं, किन्तु चोर के हृदय का परमात्मा कहता है, ''जाओ और अमुक घर से वस्तुएँ चुरा लाओ,'' किन्तु उसी समय वह गृहस्थ से कहता है, ''चोरों तथा सेंध लगाने वालों से होशियार रहो।'' भिन्न भिन्न व्यक्तियों को दिये गये ये आदेश विरोधी प्रतीत होते हैं, किन्तु हमें जान लेना चाहिए कि भगवान् परमात्मा के पास कुछ योजना है और हमें ऐसे कार्यकलापों को विरोधी नहीं मानना चाहिए। सबसे अच्छा मार्ग है कि पूर्ण मनोयोग से भगवान् में समर्पित हो जाया जाये और उनके द्वारा रक्षित होकर सदैव शान्तिपूर्वक रहा जाये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत *के चतुर्थ स्कन्ध के अन्तर्गत ''महाराज पृथु का पृथ्वी पर कुपित होना'' नामक सत्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।*